13

योग दर्शन

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन ही मोक्ष शास्त्र रूप में प्रसिद्ध हैं। इन दर्शनों में कुछ वेद का प्रमाण्य स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक दर्शन हैं। जो वेद का प्रमाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक दर्शन हैं। चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, तीन नास्तिक दर्शन प्रसिद्ध हैं। और आस्तिक दर्शन छः हैं - सांख्य दर्शन, योग दर्शन, न्याय दर्शन वैशेषिक दर्शन, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा। सांख्य-योग दर्शन के सिद्धान्त साम्यता के दर्शन से इनकी समान तन्त्रता शास्त्रों में प्रतिपादित है।

सांख्य दर्शन में पच्चीत तत्व स्वीकार किये जाते हैं, योग दर्शन में ईश्वर रूप पुरूष विशेष स्वीकृत है। अतः छब्बीस (26) तत्व माने जाते हैं। सांख्य दर्शन में अहंकार तत्व से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति प्रतिपादित है, योग दर्शन में बुद्धि तत्व से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति प्रतिपादित की जाती है। सांख्य दर्शन में तत्व की श्रवण-मनन-निदिध्यासन में अधिक गुरूत्वता प्रदर्शित है, योग दर्शन में तो अष्टांग योग आदि साधनोपायों में अधिक गुरूत्व को प्रकाशित किया गया है। एवं कुछ पार्थक्य के अतिरिक्त सांख्य-योग दर्शनों के सभी सिद्धान्तों में ही सामञ्जस्य होता है। भारतीय दर्शनों में चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी दर्शन ही योग दर्शन के द्वारा प्रभावित है। इन सभी पर योग में प्रोक्त (कहे गए) साधनोपायों का अनुसरण दिखता है।

अतः सभी दर्शन प्रस्थानों में योग दर्शन ही प्राचीनतम है, यह कुछ प्रतिपादित करते हैं। इस प्रकार योग शास्त्र के अध्ययन के बिना इतर दर्शनों का हृदय नहीं समझा जा सकता है। उपनिषदों में भी योग का गुरूत्व प्रतिपादित है। और मोक्ष धर्म में कहा जाता है- ''नास्ति सांख्य समं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्''। अतः इस पाठ में योग दर्शन के मूल तत्वों की आलोचना की गई है।

टिप्पणी

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- योगदर्शन का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- योगदर्शन की आचार्य परम्परा को जान पाने में;
- योग पदार्थ को जान पाने में;
- समाधि स्वरूप को जान पाने में;
- पञ्च चित्तवृत्तियाँ को जान पाने में;
- योग के आठ अंगों को जान पाने में;
- ईश्वर का स्वरूप जान पाने में।

13.1 योग दर्शन की आचार्य परम्परा

योग दर्शन सुप्राचीन है। उपनिषदों में योग के विषय में उक्तियाँ दिखती हैं। जैसे- ''यच्छेद् वाङ्नसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि। ज्ञानमात्मनि महति तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।'' (कठ 1. 3.13), ''तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ।।' (कठ 2.3.11), ''त्रिरून्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य। ब्रह्मोडूपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयानकानि।'' (श्वेताश्वतर 2.8) इत्यादि श्रुतियों में योग के विषय में सुगम्भीर आलोचना प्रकाशित है। इस योग के प्रोक्ता हिरण्यगर्भ है। याज्ञवल्क्य द्वारा कहा जाता है- ''हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।'' एवं कठ-श्वेताश्वतर आदि प्राचीन उपनिषदों में शाण्डिल्योपनिषद्, योगराजोपनिषद्, हंसोपनिषद्, नादबिन्दूपनिषद्, ध्यानविन्दूवनिषद्, योगकुण्डल्युपनिषद्, इत्यादि अर्वाचीन उपनिषदों में भी योग आलोचित है। परन्तु पृथक् दर्शन के रूप में योग का उपस्थापन पतञ्जलि के द्वारा ही स्व रचित योगसूत्र द्वारा विहित है।

पतञ्जलि प्रणीत योगसूत्र के अन्तर्गत ही योग दर्शन का प्रपञ्च अब दिखता है। यह पतञ्जलि व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि से भिन्न नहीं है, ऐसा सम्प्रदाय है। इसीलिए परम्परा वचन है-

''योगन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।''

यह मत स्वीकृत्य है कि पतञ्जलि ईस्वी पूर्व द्वितीय-तृतीय शताब्दी में हुए, ऐसा कहा जा सकता है। जैकोबी-गार्वे-प्रमुख पाश्चात्य दार्शनिकों के मत में योगसूत्र पाँचवी शताब्दी

ईस्वी में रचित है। परन्तु यह मत दुर्बल है वह अनुसरणीय नहीं है तथा वैयक्तिक है।

योगसूत्र का भाष्य व्यासदेव द्वारा व्यासभाष्य और योगभाष्य नाम से प्रसिद्ध है। व्यासभाष्य के ऊपर वाचस्पति मिश्र की तत्व वैशारदी टीका और विज्ञान भिक्षु का योगवार्तिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त भी भोजराज की योगवृत्ति, रामानन्द सरस्वती की योगमणिप्रभा, राघवनन्दन की पातञ्जल रहस्य, अनन्त की योग चन्द्रिका, उदयशंकर का योगवृत्तिसंग्रह, उमापति त्रिपाठी की योगसूत्रवृत्ति, गणेश दीक्षित की पातञ्जलवृत्ति, ज्ञानानन्द की योगसूत्रविवृत्ति इत्यादि ग्रन्थ योगदर्शन में प्रसिद्ध हैं।

पतञ्जलि प्रणीत योगशास्त्र का अपरनाम सांख्यप्रवचन है। योगसूत्र ग्रन्थ में चार पाद हैं। वे हैं- समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। यह ग्रन्थ 195 सूत्रों से समन्वित है। इस पाठ में पतञ्जलि योगसूत्र और व्यास भाष्य के आधार पर विषय की आलोचना की जाएगी।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. योगशास्त्र के समान तन्त्र दर्शन कौन है?
2. सांख्य दर्शन से योगदर्शन का विलक्षत्व किन स्थलों पर होता है?
3. योग के प्रथम प्रवक्ता कौन हैं?
4. योगसूत्र के रचयिता कौन हैं?
5. कुछ योगोपनिषदों के नाम लिखिए।
6. योगसूत्र के ऊपर भाष्य किसके द्वारा रचित है?
7. योगसूत्र का अपर नाम क्या है?
8. योगसूत्र ग्रन्थ में कितने पाद हैं, उनके नाम लिखिए।

13.2 योग शब्दार्थ (योग शब्द का अर्थ)

युज् समाधौ, समाधि के अर्थ से युज्-धातु से घञ्-प्रत्यय, होने पर योग शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ घञ् प्रत्यय भाव और करण में प्रयुक्त है। युज्यते अनेक इति योगः इस करण व्युत्पत्ति से निष्पन्न योग शब्द द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि का बोध होता है, योजनं योगः, इस भाव व्युत्पत्ति से निष्पन्न योग शब्द का अर्थ असम्प्रज्ञात समाधि है। भावे घञ्, यह प्रत्यय विधान सूत्र भाव में है, और करणे घञ्-प्रत्यय विधान का सूत्र तो

टिप्पणी

करण अधिकरण में है। 'युजिर् योगे', यहाँ युज् धातु सम्बन्ध सामान्य का वाचक है। अतः उसका यहाँ ग्रहण नहीं है।

योग शास्त्र में केवल समाधि के विषय में आलोचना प्रवर्तित नहीं है, योगसाधना, योगफल और अभ्यास-वैराग्य की आलोचना भी दिखती है। परन्तु योगशास्त्र, इस कथन से ही वे भी जाने जाते हैं। तथा राजासौ गच्छति, अर्थात् सपरिवार सेना-मन्त्री सहित ही राजा का गमन बोधित होता है वैसे ही योगशास्त्र का अर्थ योग सम्बन्धी इतर विषयों का अच्छी प्रकार से ग्रहण होता है। अतः युजिर् योगे, इस सम्बन्ध-सामान्य बोधक युज्-धातु से योग शब्द की निष्पत्ति स्वीकार करके समाधि सम्बद्ध विषयों की गौरव के लिए सूचना है। और व्यास द्वारा योग पदार्थ कहा जाता है- 'योगः समाधिः'। यहाँ योग सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि का बोधक होता है।

13.3 समाधि-स्वरूप और उसके भेद

'योगः समाधिः', यह पर्याय है। योग के स्वरूप विषय में पतञ्जलि द्वारा कहा जाता है- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'। चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तियाँ पाँच हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन चित्तवृत्तियों की आलोचना आगे की जाएगी। इन चित्तृवृत्तियों का निरोध चित्त की सभी भूमियों में ही होता है। और चित्तभूमियाँ पाँच हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त चित्तभूमियों में जो चित्तवृत्ति निरोध होता है, वह योग नहीं कहलाता है। वहाँ निरूद्धभूमि में असम्प्रज्ञात समाधि होती है। अतः एकाग्र भूमि और निरूद्ध भूमि में चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तभूमियों का स्वरूप नीचे आलोचित है।

चित्त की भूमि चित्त की स्वभाविक अवस्था है। जिस भूमि में अथवा जिस अवस्था में चित्त अत्यन्त अस्थिर रहता है, अतीन्द्रिय विषयों के चिन्तन के लिए धैर्य अथवा शक्ति चित्त की जिस भूमि में नहीं रहता है, वही क्षिप्त भूमि है। कभी प्रबल, हिंसा आदि प्रवृत्तियों के हेतु का इस अवस्था में भी चित्त समाहित होता है। यथा महाभारत में जयद्रथ का पाण्डव द्वेष वश शिव में चित्त समाधान हुआ। जिस अवस्था में चित्त किसी इन्द्रिय विषय में मुग्ध होकर तत्व-चिन्तन में असमर्थ होता है, वही मूढ़भूमि है। क्षिप्त की अपेक्षा से इस भूमि में इन्द्रिय-भोग्य विषयों में सरलता से चित्त समाहित होता है। स्त्री, धन आदि लाभ के लिए लोगों के चित्त समाधान प्रसिद्ध ही है। एवं मूढ़ अवस्था में कभी भी चित्त समाधान होता है। जिस भूमि में चित्त कभी स्थिर होता है अथवा कभी चञ्चल रहता है, वही विक्षिप्तभूमि है। साधकों की यह भूमि होती है। सामयिक स्थैर्य के कारण से इस अवस्था में श्रवण, मनन आदि द्वारा वस्तु का स्वरूप अवधारण सुकर होता है। मेधा-सद्वृत्ति आदि के न्यूनाधिक्य से विक्षिप्त चित्त के मनुष्य भी बहुविध होता हैं। विक्षिप्त चित्त में भी समाधि होती है परन्तु वह दीर्घकालस्थायी नहीं होती है। एक (वस्तु) को अवलम्बित करके जिसका चित्त होता है, एकाग्र चित्त

है। जिस भूमि में चित्त की एक वृत्ति-निवृत्ति के अनन्तर तद्नुरूप ही वृत्ति उदित होता है एवं अनुरूप वृत्तियों का प्रवाह निरवच्छिन्न रहता है, वही एकाग्रभूमि है। एकाग्र भूमि में सम्प्रज्ञात समाधि होती है। अन्तिम चित्तभूमि निरूद्ध भूमि है। जिस भूमि में सभी चित्तवृत्तियों का निरोध होता है और संस्कार मात्र शेष रहता है, वह निरोध भूमि है। निरोध भूमि में चित्त के विलीन होने पर कैवल्य होता है। निरूद्ध भूमि में ही असम्प्रज्ञात समाधि अथवा निर्बीज समाधि होती है। क्षिप्त-मूढ़-विक्षिप्त भूमियों में चित्तवृत्ति निरोध के स्थायित्व के अभाव से उन चित्तवृत्ति निरोध का योग पद द्वारा कथन नहीं ही होता है।

चित्तवृत्ति निरोध रूप योग दो प्रकार का है- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। जिसमें ध्येय का यथार्थ स्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है, वह सम्प्रज्ञात समाधि है। इस समाधि में ध्येय भिन्न चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, ध्येयाकार ही वृत्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधि में ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय रूप त्रिपुटि रहती है। 'योगः चित्तवृत्ति निरोधः', यहाँ सभी चित्तवृत्तियाँ का निरोध नहीं कहा गया है, अतः योग का लक्षण सम्प्रज्ञात योग में भी जाता है। सम्प्रज्ञात समाधि-वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत चार प्रकार की है। इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य स्थूल विषयों में और वराट्-पुरूष-चतुर्भुजादि स्थूल मूर्तियों के विषय में वृत्तिधारा होती है। तो वितर्कानुगत समाधि होती है। स्थूल कारणभूत तथा सूक्ष्म विषयों में जब वृत्तिधारा होती है तब विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। स्थूल कार्य से विचार द्वारा ही सूक्ष्म कारण का ज्ञान उत्पन्न होता है, इस हेतु की सूक्ष्मविषयक सम्प्रज्ञात समाधि विचारानुगत होती है। सात्विक अहंकार से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्द्रिय विषयक चित्तवृत्ति में सत्य में आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसीलिए प्राणायाम आदि के द्वारा शरीर सुस्थिर होता है कि शरीर में सुखमय बोध होता है, उस प्रकार के सुख मात्र को अवलम्बित करके ध्यान में रखते हुए सानन्द सम्प्रज्ञात समाधि होती है। इन्द्रियों की अस्मिता की अपेक्षा से स्थूलत्व के कारण, इन्द्रियों की अस्मिता कार्यत्व के कारण। अस्मिता के ग्रहण के विषय में समाधि अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। ये चार प्रकार के समाधि भी सालम्बन हैं। इनमें पुनः वितर्कानुगत और विचारानुगत ग्राह्य विषयक हैं, आनन्दानुगत ग्रहण विषयक और अस्मितानुगत ग्रहीत विषयक हैं।

सभी वृत्तियों का निरोध होने पर असम्प्रज्ञात समाधि होती है। असम्प्रज्ञात समाधि में निरोध संस्कार के कारण व्युत्थान संस्कार द्वारा वृत्तियों की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः असम्प्रज्ञात समाधि संस्कार शेष कहलाती है। और यह समाधि आलम्बन रहित परवैराग्य द्वारा साध्य है। निरालम्बन और निर्विषय होने के कारण कर्मबीज के अभाव वश यह निर्बीज समाधि भी कहलाती है। असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है- भाव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय। इन दोनों में उपाय प्रत्यय उत्कृष्ट तथा भव प्रत्यय तो निकष्ट है। विदेह देवों की और प्रकृति लीनों की समाधि भवप्रत्यय अविद्यामूलक है। योगियों के ही श्रद्धा आदि उपाय जन्य हैं। चौबीस जड़तत्वों के उपासक ही विदेह और प्रकृतिलीन होते हैं। इसीलिए मूल प्रकृति अव्यक्त के, प्रकृति-विकृति महत् तत्व, अहंकार और शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध नामक सूक्ष्म पञ्च तन्मात्राओं के उपासक असम्प्रज्ञात समाधि में होने पर प्रकृतिलीन

होते हैं। केवल विकृति एकादश इन्द्रियों और पञ्च स्थूलभूतों के उपासक असम्प्रज्ञात समाधि में विदेह होते हैं। इन समाधियों के अज्ञान मूलक होने से ऊर्ध्व लोक से पुनः मोक्ष प्राप्ति के लिए साधकों की पुनरावृत्ति होती है। और वायुपुराण में कहा जाता है–

दशमन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः।
भौतिकास्तु शतं पूर्ण सहस्रं त्वाभिमानिकाः।

बौद्धा दश सहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः।
पूर्ण शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः।
निर्गुणं पंरूषं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते।

इन्द्रियोपासकों का मुक्तिकाल दशमन्वन्तर, सूक्ष्मभूत उपासकों के सौ मन्वन्तर, अहंकारोपासकों के हजार मन्वन्तर, बुद्धि उपासकों के दस हजार मन्वन्तर, प्रकृति उपासकों के लाख मन्वन्तर हैं। निर्गुण पुरूष की प्राप्ति में पुनः प्रत्यावृत्ति नहीं होती है। उपाय प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि योगियों के श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञापूर्वक होती है। उपाय प्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि ही कैवल्य जनक होता है।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. योगशब्द की व्युत्पत्ति क्या है?
2. योगशब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ क्या है?
3. योग स्वरूप प्रत्यायक पातञ्जल सूत्र क्या है?
4. चित्तवृत्तियाँ कितनी हैं, और वे क्या हैं?
5. चित्तभूमियाँ कितनी हैं और वे क्या हैं?
6. एकाग्र भूमि और निरूद्धभूमि में किस प्रकार की समाधि होती है?
7. निरूद्धभूमि क्या है?
8. समाधि कितने प्रकार की है, और वे क्या हैं?
9. सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
10. सम्प्रज्ञात समाधि कितने प्रकार की है, और वे क्या हैं?
11. वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
12. आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
13. असम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
14. असम्प्रज्ञात समाधि कितनी हैं और वे क्या हैं?

15. भव प्रत्यय समाधि क्या है?

16. उपाय प्रत्याय असम्प्रज्ञात समाधि क्या है?

13.4 चित्तवृत्तियाँ

चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर समाधि होती है। चित्तवृत्तियों का नाम चित्त का परिणाम विशेष है। यथा मृदा के परिणाम भूत घट आदि तथा चित्त की अवस्था विशेष ही ये चित्तवृत्तियाँ है। योगशास्त्र में पाँच चित्तवृत्तियों की आलोचना है। जब वे मोक्ष सहायिका होती है। तब वे अक्लिष्टा है, और जब मोक्षविरोधी होती हैं तब क्लिष्टा कहलाती है। पाँच चित्तवृत्तियाँ हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। अत: योगसूत्र में पतञ्जलि द्वारा सूत्रित हैं- वृत्तय: पञ्चत-य: क्लिष्टाक्लिष्टा: (योगसूत्र-1.5) और 'प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा- स्मृतय:' (योगसूत्र-1.6)। ये चित्तवृत्तियाँ ज्ञानात्मक हैं। इन चित्तवृत्तियों की आलोचना नीचे विधीत है।

प्रमा का करण प्रमाण है। पुरूष प्रतिबिम्ब सहित असन्दिग्ध-अविपरीत अनधिगत विषय युक्त चित्तवृत्ति ही प्रमा है। प्रमाण ही असन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषय चित्तवृत्ति है। सांख्य के समान योग मत में भी प्रमा प्रमाण दोनों ज्ञानात्मक होते हैं। अत: घटप्रत्यक्ष के समय जब चक्षु इन्द्रिय का घट से सम्बन्ध होता है तब बुद्धि चक्षु द्वारा घट से सम्बन्ध को प्राप्त करती हैं, और घटाकार से परिणत होती हैं। यह घटाकारा चित्तवृत्ति ही प्रमाण है। जब स्वच्छाया चित्तवृत्ति में पुरूष प्रतिबिम्बित होता है तब घटाकारा चित्तवृत्ति पुरूष प्रतिम्बित विशिष्ट होती है। वही पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट घटाकारा चित्तवृत्ति की घटविषयी प्रमा है और उसका स्वरूप है-मैं घट को जानता हूँ। घटाकार रूप चित्तवृत्ति ही घट ज्ञान है, वह घट ज्ञान तो प्रमाण है। घट ज्ञान के साथ जब पुरूष का सम्बन्ध होता है तब "मैं घट को जानता हूँ", यह 'अहम्' (मैं) पद कहने वाले पुरूष के साथ सम्बद्ध ज्ञान ही प्रमा होती है। वाचस्पति मिश्र द्वारा प्रमाण का लक्षण उक्त है- "असन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्ति:"। वृक्ष कपि (वानर) के संयोग वाला है अथवा नहीं इत्यादि सन्देह में अतिव्याप्ति वारण के लिए 'असन्दिग्ध' होता है। अविपरीत पद का अर्थ अबाधितत्व है। भ्रम ज्ञान में अतिव्याप्ति के वारण के लिए यह पद उपयुक्त है। शुक्ति-रजत आदि भ्रमों में रजत आदि विषय उत्तर ज्ञान से बाधित होते हैं। अत: उनका बाधितत्व है, अबाधितत्व नहीं। अनधिगत पद स्मृति में अतिव्याप्ति के वारण के लिए दिया गया है। घट-प्रत्यक्ष के काल में ही घट अधिगत होता है, अधिगत विषय के संस्कार के कारण अधिगत विषय में स्मृति होती है। अत: संशय, भ्रम और स्मृति का प्रमाणत्व नहीं। और वह प्रमाण तीन प्रकार का है- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। और पतञ्जलि द्वारा सूत्रित है-"प्रत्यक्षानुमानागमा: प्रमाणानि" (योगसूत्र 1.7)। इस प्रकार इन्द्रिय सन्निकृष्ट वस्तु में चित्त उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। यथा चक्षु इन्द्रिय सन्निकृष्ट घट में चित्तसम्बन्ध के कारण जो घट व्यक्ति अवधारण प्रधान चित्तवृत्ति उत्पन्न

होती है वह घटाकार चित्तवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह्नि आदि के तुल्य जातियों में पर्वत आदि पक्ष सदृशों में, महानस आदि सपक्षों में विद्यमान, भिन्न जातियों में जलहृद (सरोवर) आदि में अवर्तमान जो धूम-अग्नि का अविनाभाव सम्बन्ध है, तद्विषयी सामान्य रूप अवधारणप्रधान वृत्ति अनुमान कहलाती है। अत: पर्वत अग्निवाला है, यह ज्ञान ही अनुमान होता है। आप्त वाक्य से तदर्थ विषयी जो वृत्ति उत्पन्न होती है, वही आगम प्रमाण है। अत: वाक्यार्थ विषयी वृत्ति ही यहाँ आगम प्रमाण है, ऐसा तात्पर्य है।

बाधित विषयी चित्तवृत्ति ही विपर्यय है। विपर्यय मिथ्याज्ञान है, इस ज्ञान में जो विषय होता है, वह प्रमाणरूप उत्तर ज्ञान से बाधित होता है। जैसे रस्सी में भ्रम के कारण सर्पाकार वृत्ति ही विपर्यय वृत्ति है। और सूत्रित है-विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूप प्रतिष्ठम्। शब्द ज्ञान को अनुसरण करके समुत्पन्न जिस चित्तवृत्ति में विषय नहीं रहता है, वह वस्तु शून्य चित्तवृत्ति ही विकल्प कहलाती है। जैसे शशश्रृंग आदि शब्द आकर्ण्य तदाकार वृत्ति उत्पन्न होती है परन्तु शशश्रृंग जैसे वस्तु ही नहीं है। यही चित्तवृत्ति विकल्प कहलाती है। इसीलिए योगसूत्र में-शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्प:। चित्त की जिस अवस्था में बाह्य इन्द्रिय जन्य जाग्रत वृत्ति और मन द्वारा उत्पन्न स्वप्न वृत्ति नहीं रहती है, तब अभाव प्रत्यय ही चित्त का आलम्बन होता है। एवं जो अभाव प्रत्यय विषयी चित्तवृत्ति है, वही निद्रा है। सूत्र है-अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। प्रमाण, विपर्यय आदि द्वारा अधिगत पदार्थ ही विषय है जिस चित्तवृत्ति का, वही स्मृति है। संस्कार के द्वारा अनुभव स्मृति का जनक होता है। तथा योगसूत्र में-अनुभूतविषयासम्प्रमोष: स्मृत:। अभ्यास और वैराग्य से इन चित्तवृत्तियों का निरोध होता है।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. कब चित्तवृत्तियाँ क्लिष्ट अथवा अक्लिष्ट होती हैं?
2. प्रमाण किसका नाम है?
3. योग मत में कितने प्रमाण हैं और वे क्या हैं?
4. प्रमा क्या है?
5. प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?
6. घट प्रत्यक्ष स्थल पर प्रत्यक्ष प्रमा का क्या रूप है?
7. विपर्यय क्या है?
8. विकल्प क्या है?
9. निद्रा क्या है?
10. स्मृति क्या है?

13.5 योग के आठ अङ्ग

सांख्य के समान योगमत में प्रकृति और पुरूष दो नित्य तत्व हैं। प्रकृति से बुद्धि तत्व उत्पन्न होता है। पुरूष ही अङ्ग, चेतन और निष्क्रिय है। जड़ बुद्धि में सुख-दु:ख आदि होते हैं, सुख, दु:ख आदि का अभाव भी बुद्धि से ही होता है। जब पुरूष अविद्या वश बुद्धितत्व के साथ तादात्म्य को अनुभव करता है तब बुद्धिगत सुख, दु:ख का उपभोग करके बद्ध होता है, और जब पुरूष बुद्धि के साथ स्वयं का भेद जानता है तब बुद्धिगत सुख-दु:ख को अनुभव नहीं करता है। पुरूष तब अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है, और मुक्त हो जाता है। पुरूष नित्य मुक्त है, उसकी अपने स्वरूप में स्थिति ही मोक्ष है। मोक्ष में कारण बुद्धि-पुरूष का विवेक ज्ञान है। वही सत्वपुरूषान्यताख्याति, सदसत्ख्याति, विवेकी इत्यादि पदों के द्वारा कहा जाता है। इस विवेक ख्याति के साधन रूप में अष्टांग योग का निरूपण योगशास्त्र में व्याख्यायित है। वे आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनका निरूपण नीचे दिया गया है।

यम- पातञ्जल सूत्र है- ''अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमा:''। अहिंसा भूतों की प्राण-हरण से विरक्ति है। सत्य यथार्थ वाणी अथवा यथार्थ मन है। वैसे ही प्रत्यक्ष, अनुमिति अथवा आगम द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसके अनुसार ही प्रयुक्त भूत (जीव) हितकर वाक्य सत्य होता है। मन का भी अभिप्राय यही हो कि जो अर्थ ज्ञात है, वही अर्थ अन्य की बुद्धि में प्रकाशित हो। स्वयं के अभिप्राय से अन्तर के कारण अपरार्थबोधक वाक्य सत्य नहीं होता है। उससे मन के भी अर्थ अनुयायित्व को अभिप्रेत करके सत्यत्व को कहा गया है। अत: 'अश्वत्थामा मर गया' यह युधिष्ठिर का वाक्य भी सत्य नहीं होता है। जीवों का अहितकर वाक्य भी सत्य पद वाच्य नहीं होता है। स्तेय अशास्त्रपूर्वक दूसरे के द्रव्यों को स्वीकार करना है। 'न स्तेयम्' अर्थात् अस्तेय है। मन से वाक्य अथवा कर्म में परद्रव्य पर स्पृहाभाव ही अस्तेय है। चोरी से विरक्ति ही अस्तेय है। उपस्थ और अन्य इन्द्रियों का संयम ही ब्रह्मचर्य है। अथवा अष्टांग मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य है। दक्ष मुनि द्वारा कहा जाता है-

''स्मरणं कीर्तनं केलि: प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टान्न प्रवदन्ति मनीषिण:।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥''

भोग्य के विषयों का असंग्रह ही अपरिग्रह है। प्राणधारण के लिए उपयुक्त द्रव्य मात्र को संग्रह करने वाला योगी है। भोग्य के विषयों के अर्जन, रक्षण और क्षय होने पर दु:ख ही उत्पन्न होता है। अत: भोग्य के विषयों के संग्रह से विरति ही अपरिग्रह है। जाति-देश-काल नियमान्तरों के द्वारा अनवच्छिन्न यम महाव्रत कहा जाता है।

नियम- नियम के विषय में पातञ्जल योगसूत्र में- ''शौच-सन्तोष- तप:-स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा:''। शौच दो प्रकार का है- बाह्य और आभ्यन्तर। मृदा, जल आदि द्वारा शरीर का प्रक्षालन ही बाह्य शौच है और आभ्यन्तर द्वेष, असूया आदि चित्तमलों का दूरीकारण है। सन्तोष अर्थात जीवन धारण के लिए जो उपकरण प्राप्त है उससे अधिक की अनाकांक्षा। सन्तोष ही सुख का मूल है। और कहा जाता है-''सन्तोषादुत्तमसुखलाभ:''। तप अर्थात् शुभ-अशुभ, सुख-दु:ख, शीत-ग्रीष्म इत्यादि द्वन्द्वों को सहन करना। कृच्छ, चान्द्रायण अदि व्रत तप पद द्वारा कहे जाते हैं। उपनिषद्, गीता आदि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन अथवा ओंकार का जप स्वाध्याय है। परमगुरू ईश्वर में सभी कर्मों का समर्पण ही ईश्वर-प्रणिधान है।

आसन- जिस स्थिति में स्थिर एवं सुख से दीर्घकाल की स्थिति सम्भव होती है, वह आसन होता है। और कहा जाता है- ''स्थिरसुखम् आसनम्''। पद्मासन, वीरासन, स्वस्तिकाासन, दण्डासन इत्यादि आसन के उदाहरण हैं।

प्राणायाम- प्राणवायु अथवा श्वास-प्रश्वास का संयम ही प्राणायाम है। और सूत्रित है - ''श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छे प्राणायाम्:''। इसीलिए बाहरी वायु का अन्दर ग्रहण श्वास और प्रश्वास अन्त:स्थ वायु का बाहर नि:सारण है। उनकी गतिविच्छेद का अर्थ उनका अभाव है।

प्रत्याहार- जब चित्त एकाग्र होकर शब्द आदि विषयों के द्वारा प्रतिनिवृत्त होता है तब इन्द्रियाँ भी स्थिर होती हैं, यह स्वाभाविक इन्द्रिय-निरोध ही प्रत्याहार कहलाता है। तथा सूत्र है- ''स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:''।

धारणा- विषयान्तर से प्रतिनिवृत्त चित्त का नाभि-चक्र आदि देशों में देवतामूर्ति विशेष में लग्नता ही धारणा है। और सूत्रित है - ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा''।

ध्यान- जहाँ चित्त स्थिरीकृत होता है, वहाँ चित्तवृत्ति की एकान्तता ही ध्यान है। एवं प्रत्ययान्तर से अनन्तरित के सदृश प्रत्यय-प्रवाह ही ध्यान है। और सूत्र है - तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''।

समाधि - ध्यानावस्था जब परिपक्व होती है, और जब ध्यान-ध्याता का प्रतिभास नहीं होता, ज्ञेयमात्र ही प्रतिभासित होता है, वह स्थिति समाधि कहलाती है। और सूत्रित है- ''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप- शून्यमिव समाधि:''। और यह समाधि योगाङ्ग है, यह सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि की साधनभूत है। धारणा-ध्यान-समाधि सम्प्रज्ञान समाधि के अंतरंग साधन हैं और असम्प्रज्ञात समाधि के बहिरंग साधन है। विज्ञानभिक्षु के मत में इस योगाङ्गभूत समाधि में जहाँ विषय में चित्त एकाग्र होता है, उस विषय का ही प्रकाश होता है, उस विषय के सभी धर्मों का साक्षात्कार नहीं होता है। सम्प्रज्ञात समाधि में ही ध्येय का अशेषविशेष का साक्षात्कार होता है। उससे परवैराग्य की उत्पत्ति में क्रम से असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

13.6 ईश्वर का स्वरूप

योगदर्शन ईश्वर को स्वीकार करने से सांख्य दर्शन से विलक्षण होता है। योगदर्शन में अत: ईश्वर को स्वीकार करके छब्बीस (26) तत्व होते हैं। परवैराग्य प्राप्ति के अनन्तर श्रद्धा, वीर्य आदिपूर्वक असम्प्रज्ञात समाधि होती है। और वह समाधि ईश्वर-प्रणिधान द्वारा सिद्ध होती है। प्रणिधान भक्ति है। योगवात्तिक में विज्ञानभिक्षु द्वारा कहा जाता है- ''कामतोऽकामतो वापि यत् करोमि शुभाशुभम्। तत् सर्व त्वयि सन्नयस्तं त्वत्प्रयुक्त: करोम्यहम्।।'' ईश्वर प्रणिधान के द्वारा ईश्वर-अभिमुखीनता होती है। और उससे ईश्वर अनुग्रह के कारण अन्तरायण का दूरीकरण और समाधि-लाभ होता है।

ईश्वर कौन है, इस प्रश्न के होने पर पतञ्जलि के द्वारा कहा जाता है- ''कलेश-कर्म-विपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरूष विशेष ईश्वर:''। ईश्वर ही पुरूष विशेष है, और वह नित्यमुक्त है। बद्ध पुरूष विवेकख्याति प्राप्ति के अनन्तर मुक्त होने से ईश्वर नहीं होता है, ईश्वर का कभी भी बन्धन नहीं होता। ईश्वर के अविद्या अस्मिता आदि क्लेश नहीं होते है। धर्म-अधर्म आदि रूप कर्मो में और उनके फल जन्म, आयु-भोग आदि ईश्वर के नहीं होते हैं। ईश्वर का भोगानुकूल संस्कार आशय भी नहीं होता है। इस प्रकार के ईश्वर के अनुग्रह से बद्धपुरूषों की समाधि और समाधि के सकल दु:खों की आत्यन्तिक-ऐकान्तिक नाश रूप मोक्ष की सिद्धि होती है।

ईश्वर सर्वज्ञ है, उसमें सर्वांतिशयी ज्ञान होता है। और ईश्वर काल के द्वारा अनवच्छिन्न है। अत: कल्प आदि में उत्पन्न ब्रह्मा आदि काल से अवच्छिन्न हैं। ईश्वर ही उन ब्रह्मा आदि का गुरू है। उस ईश्वर का वाचक शब्द ओंकार होता है। प्रणव के जप और प्रणवार्थ ईश्वर के चिन्तन से योगी का चित्त एकाग्र होता है। एवं प्रणव के जप से और प्रणवार्थ ईश्वर के चिन्तन से बद्ध पुरूष के स्वरूप साक्षात्कार और अन्तरायाभाव होते हैं। योग के नौ बाधक हैं- व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, विरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध-भूमित्व और अनवस्थितत्व। यद्यपि योग के मत में ईश्वर जगत् का स्रष्टा नहीं है तथापि उपास्य रूप में, मोक्ष-फलोपयोगी और समाधि-प्रदाता के रूप में उसका वर्णन योगशास्त्र में उपनिबद्ध है।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. योग के आठ अंग कौन से हैं?
2. यम क्या है?
3. अहिंसा क्या है?
4. अपरिग्रह क्या है?

5. नियम क्या है?
6. आसन क्या है?
7. प्राणायाम क्या है?
8. प्रत्याहार क्या है?
9. धारणा क्या है?
10. ध्यान का स्वरूप लिखिए।
11. ईश्वर क्या हैं?
12. क्लेश क्या है?
13. ईश्वर प्रणिधान क्या है?

पाठसार

भारतीय आस्तिक दर्शनों में योगदर्शन अन्यतम है। सांख्य दर्शन और योगदर्शन समान तन्त्र हैं। योगदर्शन सुप्राचीन है। उपनिषदों में भी योग का उल्लेख दिखाई देता है। हिरण्यगर्भ ही योग के प्रथम वक्ता हैं। योगसूत्र की रचना के माध्यम से पतञ्जलि ने दर्शनरूप में इसकी स्थापना की। योगसूत्र के ऊपर व्यास का भाष्य प्रसिद्ध है। पतञ्जलि प्रणीत योगशास्त्र का अपर नाम सांख्य प्रवचन है।

योगपद का अर्थ है 'समाधि'। समाधि पद से यहाँ सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात का बोध होता है। समाधि अर्थक युज् धातु के करण और भाव में धञ् प्रत्यय होने पर योग शब्द सिद्ध होता है। पतञ्जलि द्वारा सूत्रित है- योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:। और पाँच चित्तवृत्तियाँ है- प्रमाण, विवर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। इन चित्तवृत्तियों का निरोध चित्त के सभी भूमियों में होता है परन्तु वे सभी निरोध समाधि पद वाच्य होते हैं। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध पाँच चित्तभूमियाँ हैं। एकाग्र भूमि में सम्प्रज्ञात समाधि होती है और निरूद्ध भूमि में असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

जिस समाधि में ध्येय का यथार्थ स्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है, वह सम्प्रज्ञात समाधि है। इस समाधि में ध्येय भिन्न वृत्तियों का निरोध होता है, ध्येयाकार ही वृत्ति होती है। सम्प्रज्ञात समाधि में ही ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय रूप त्रिपुटि का बोध होता है। और वह सम्प्रज्ञात समाधि वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत चार प्रकार की है। ये चार प्रकार की समाधियाँ सालम्बना हैं। इनमें वितर्कानुगत स्थूल विषय को अवलम्बित करता है और विचारानुगत सूक्ष्म विषय को। अत: ये ग्राह्य विषय हैं। आनन्दानुगत इन्द्रियविषयक, अत: यह ग्रहण विषयक है, ऐसा कहा गया है। और अस्मितानुगत ग्रहीता विषयक है। सर्ववृत्तियों के निरोध में ही असम्प्रज्ञात समाधि होती है। यह समाधि आलम्बनरहित

परवैराग्य से साध्य है। निरालम्बन और निर्विषय होने से कर्मबीजीभाव के कारण यह समाधि निर्बीज समाधि भी कही जाती है। असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है- भवप्रत्यय और उपाय प्रत्यय। देवों की और प्रकृतिलीनों की समाधि भवप्रत्यय है, और वह अविद्यामूलक है, अतः उपायप्रत्यय से निकृष्ट है। योगियों के श्रद्धा आदि उपाय जन्य असम्प्रज्ञात समाधि उपायप्रत्यय नाम से व्यपदिष्ट है।

सांख्य दर्शन के समान योगदर्शन में भी प्रकृति-पुरूष विवेक ज्ञान ही दु:ख ध्वंस रूप मुक्ति स्वीकृत है। और उन सत्वपुरूषन्यताख्याति अथवा प्रकृति-पुरूष विवेकज्ञान को प्राप्त करने के लिए अष्टागों का आचरण अपेक्षित है। और वे अंग हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

योगदर्शन में ईश्वर स्वीकृत हैं। और वह ईश्वर पुरूष विशेष हैं और उनमें क्लेश-कर्म-विपाक-आशय का संस्पर्श नहीं होता है। और सूत्रित है- ''क्लेश-कर्म-विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः''। ईश्वर के प्रणिधान से ईश्वर प्रसाद होने पर उनकी कृपा द्वारा समाधि लाभ होता है और उससे मुक्ति सम्भव होती है। उस ईश्वर का वाचक ओंकार है। ओंकार के जप से ओंकार वाच्य पुरूष के अनुचिन्तन द्वारा बद्धपुरूष के स्वरूप साक्षात्कार होते हैं। तत्वलाभ के लिए जो उपाय योगशास्त्र में उपदिष्ट हैं, वे न्याय-वेदान्त आदि दर्शनों में भी स्वीकृत हैं। अतः योगदर्शन का सर्व प्राचीनतत्व और गुरूत्व सम्यक रूप से जाना जा सकता है।

पाठान्त प्रश्न

1. सत्य क्या है?
2. योगवृत्ति नुगत समाधि क्या है?
3. अस्मिता नुगत समाधि क्या है?
4. विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि क्या है?
5. धारणा क्या है?
6. ब्रह्मचर्य क्या है?
7. चित्त की विक्षिप्त भूमि क्या है?
8. चित्त की मूढ़भूमि क्या है?
9. सम्प्रज्ञात समाधि किस चित्त भूमि में होती है?
10. अनुमान प्रमाण क्या है?
11. योगमत में आगम प्रमाण क्या है?

टिप्पणी

12. चित्तवृत्तियों का निरोध कैसे होता है?
13. अष्टांग मैथुन क्या है?
14. महाव्रत क्या है?
15. शौच कितने प्रकार का है?
16. सन्तोष क्या है?
17. तप क्या है?
18. स्वाध्याय क्या है?
19. ईश्वर प्रणिधान क्या है?
20. वितर्कानुगत और विचारानुगत क्या विषय हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-13.1

1. सांख्यदर्शन
2. योगदर्शन में ईश्वर स्वीकृत हैं, और बुद्धितत्व से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति स्वीकृत है।
3. हिरण्यगर्भ
4. पतञ्जलि
5. शण्डिल्योपनिषद्, योगराजोपनिषद्, हंसोपनिषद्, नादबिन्दुपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, योगकुण्डल्यूपनिषद् इत्यादि।
6. व्यास द्वारा रचित और वह व्यासभाष्य नाम से प्रसिद्ध है।
7. सांख्य प्रवचन
8. योगदर्शन में समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद ये चार पाद हैं।

उत्तर-13.2

1. युज् समाधौ, युज् धातु के करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय होने पर योग शब्द निष्पन्न होता है।
2. 'करणे धञ्', निष्पन्न योग शब्द का सम्प्रज्ञात समाधि अर्थ है, 'भावे घञ्' निष्पन्न योगशब्द का असम्प्रज्ञात समाधि अर्थ है।

3. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।
4. चित्तवृत्तियाँ पाँच हैं। और वे प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति है।
5. चित्तभूमियाँ पाँच हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध।
6. एकाग्रभूमि में सविकल्पक समाधि और निरूद्धभूमि में निर्विकल्पक समाधि होती है।
7. जिस भूमि में सभी चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, और संस्कार मात्र बचते हैं, वही निरोध भूमि है।
8. समाधि दो प्रकार की है- सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।
9. जहाँ समाधि में ध्येय का यथार्थस्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है और ध्येय भिन्न चित्तवृत्तियों का निरोध होता है, वही सम्प्रज्ञात समाधि है।
10. सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की है- वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत।
11. इन्द्रिय ग्राह्य स्थूलविषयों में विराट्-पुरूष-चतुर्भुज आदि स्थूल मूर्ति के विषय में समाधि ही वितर्कानुगत सम्प्रज्ञान समाधि है।
12. इन्द्रिय-विषय में सम्प्रज्ञात समाधि ही आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है।
13. जहाँ समाधि में निरोध संस्कार के कारण व्युत्थान संस्कार के द्वारा वृत्तियों की उत्पत्ति नहीं होती वह संस्कार शेष समाधि असम्प्रज्ञात समाधि है। यह निर्बीज समाधि भी कहलाती है।
14. असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की है- भवप्रत्यय और उपाय प्रत्यय।
15. अव्यक्त आदि चौबीस जड़ तत्व विषयक असम्प्रज्ञात समाधि भवप्रत्यय है।
16. श्रद्धा आदि उपाय वश जो असम्प्रज्ञात समाधि होती है, वह उपाय प्रत्यय है और वह मोक्ष जनक होता है।

उत्तर-13.3

1. जब पाँच चित्तवृत्तियाँ पुरूष की मोक्ष सहायिका होती हैं तब वे अक्लिष्ट होती हैं, जब मोक्ष विरोधी होती हैं तब वे क्लिष्ट होती हैं।
2. प्रमा असन्दिग्ध, अविपरीत, अनधिगत विषय चित्तवृत्ति है।
3. योग मत में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम तीन प्रमाण हैं।
4. प्रमाण जन्य पौरूषेय बोध ही प्रमा है।

टिप्पणी

5. इन्द्रिय सन्निकृष्ट के विषय में चित्त सम्बन्ध के कारण जो विषय व्यक्ति की अवधारण प्रधान चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है, वह विषयाकार चित्तवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

6. मैं घट को जानता हूँ।

7. बाधित विषयी चित्तवृत्ति ही विपर्यय है। सूत्रित है- विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम्।

8. शब्द ज्ञान का अनुसरण करके समुत्पन्न जिस चित्तवृत्ति में विषय नहीं रहता है, वह वस्तु शून्य चित्तवृत्ति ही विकल्प कहलाती है। सूत्रित है- शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।

9. अभावप्रत्ययालम्बना चित्तवृत्तिर्हि निद्रा।

10. अनुभूत विषय की ही संस्कारजन्य चित्तवृत्ति स्मृति कहलाती है। और सूत्रित है- अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।

उत्तर-13.4

1. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगांग हैं।

2. अहिंसा-सत्य-अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यम पद से व्यपदिष्ट हैं।

3. भूतों (जीवों) के प्राण हरण से विरति अहिंसा है।

4. प्राण-धारण के लिए उपयोगी द्रव्यों के अतिरिक्त भोग विषयों के संग्रह का अभाव ही अपरिग्रह है।

5. शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

6. जिस स्थिति में स्थिरता और सुख से दीर्घकाल तक स्थिति सम्भव होती है, वह आसन है। और सूत्रित है- ''स्थिरसुखम् आसनम्''।

7. प्राणवायु का अथवा श्वास-प्रश्वास का संयम ही प्राणायाम है। सूत्रित है- श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

8. जब चित्त एकाग्र होकर शब्दादि विषयों से प्रतिनिवृत्त होता है तब इन्द्रियाँ भी स्थिर होती है, यह स्वाभाविक इन्द्रिय-निरोध ही प्रत्याहार कहलाता है।

9. विषयान्तर से प्रतिनिवृत्त चित्त का नाभिचक्र आदि देशों में देवतामूर्ति विशेष में लग्नता ही धारणा है।

10. एक विषय में प्रत्ययान्तर द्वारा अनन्तरित सदृश प्रत्यय प्रवाह ही ध्यान है। और सूत्रित है - ''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''।

11. क्लेशकर्मविपाकाशयरहित: पुरूषविशेषे हि ईश्वर:।

12. अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशा: पाँच क्लेश हैं।

13. ईश्वर में भक्ति ही ईश्वर प्रणिधान नाम से कहा जाता है।

।तेरहवाँ पाठ समाप्त।।